7092

तित्थयर

वर्ष ४ अंक ११ : मार्च १९८१

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office

The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ४ : अंक ११

मार्च १९८१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७०००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७०००००७

सूची

बंगाल में जैन युग की स्मृति ३२५

श्रीपाल ३३३

जीव ३४०

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ ३४६

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ३५०

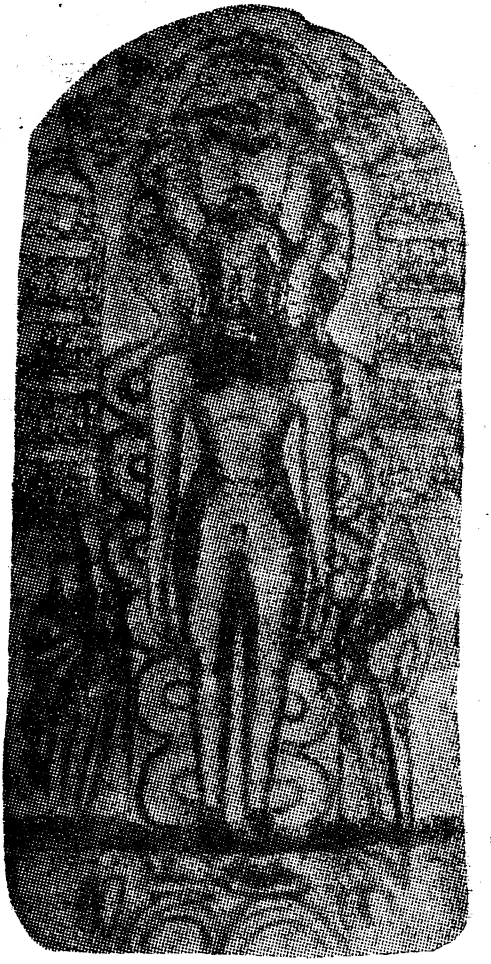

पालकालीन पार्श्वनाथ

बंगाल में जैन युग की स्मृति

—श्री गोपेन्द्र कृष्ण बसु

जैन साहित्य के आचारांग सूत्र में कहा गया है कि अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने धर्म-प्रचार के लिए लाढ़, सुम्ह (पश्चिम बंगाल) प्रभृति अंचलों में भ्रमण किया था। इन स्थानों में प्रथमतः उनका विरोध हुआ था। यहाँ तक कि उन्हें अत्यधिक अत्याचारों को भी सहन करना पड़ा था। किन्तु अन्ततः अधिकांश क्षेत्रों में उन्हें सफलता मिली।

महावीर के पश्चात् खृष्ट पूर्व चतुर्थ शताब्दी में विख्यात् जैन आचार्य अन्तिम श्रुत-केवली भद्रबाहु का बंगाल में जैन धर्म प्रचार उल्लेखनीय है। भद्रबाहु का जन्म देवकोट में हुआ था। उस समय देवकोट को कोटिवर्ष कहा जाता था। कोटिवर्ष उत्तरी बंगाल के मध्य वर्त्तमान दिनाजपुर जिला का वानगढ़ है।

भद्रबाहु अपने समय के सबसे अधिक प्रभावशाली धर्म प्रचारक थे। कहा जाता है वे मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के गुरु थे। चन्द्रगुप्त ने उन्हीं की प्रेरणा एवं प्रभाव से जैन धर्म ग्रहण किया था।

भद्रबाहु रचित कल्पसूत्र में गोदास गण का उल्लेख पाया जाता है। वहाँ गोदासगण की कई शाखाओं में चार शाखाओं को बंगाल से सम्बन्धित बताया गया है। यथा : ताम्रलिप्तिया—तमलुक शहर के, कोटिवर्षिया— दिनाजपुर के निकटस्थ वानगढ़ के, पुण्ड्रवर्द्धनिया—बगुड़ा के निकटस्थ महास्थान गढ़ के और दासी खर्वटिया—मेदिनीपुर के समीप खर्वट के। इससे कहा जाता है कि महावीर और उनके शिष्य प्रशिष्यों के धर्म प्रचार के कारण समस्त बंगाल में एक समय जैन धर्म प्रतिष्ठित हुआ था। लगता है पार्श्वनाथ के समय में भी इन सब अंचलों में जैन धर्म का प्रचार हुआ था। इस धारणा का कारण यह है कि बंगाल के विभिन्न स्थानों से प्राप्त जैन तीर्थंकर की मूर्त्तियों में पार्श्वनाथ की प्रतिमाएँ ही अधिक हैं। खृष्ट पूर्व से दीर्घ काल तक जैन धर्म के प्रचार के फलस्वरूप पूर्वी भारत के इस अंचल में अर्थात् बंगाल में सहस्र-सहस्र व्यक्ति जैन धर्म ग्रहण कर इस धर्म के प्रति श्रद्धाशील बने थे। उन्हीं के द्वारा बहुत से जैन मठ, मन्दिर और तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ विभिन्न स्थानों में प्रतिष्ठित हुई थीं।

इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है कि मौर्य राजागण जिस समय पाटलीपुत्र से

बंग देश पर शासन करते थे उस समय इस देश में जैन धर्म ने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी कि परवर्ती कई शताब्दियों तक उसका प्रभाव बना रहा।

खृष्टीय सप्तम शताब्दी के राजा हर्षवर्द्धन के समय चीन देशीय बौद्ध परिव्राजक ह्वेन सांग भारत परिभ्रमण के लिए आए थे। वे दीर्घकाल तक इस देश में रहे थे। उनके भ्रमण वृतान्त में उल्लिखित है—हर्षवर्द्धन शैव होते हुए भी जैन धर्म के विशेष अनुरागी थे एवं उस समय बंगाल में विशेष कर दक्षिण पश्चिम अंचल में बहुत से निर्ग्रन्थ जैन ब्राह्मण थे। बंगाल में बौद्ध की अपेक्षा जैन धर्म का प्रभाव अधिक विस्तृत था।

बंगाल में पाल राजाओं के शेष युग से जैन धर्म के प्रभाव का ह्रास होने लगा था एवं सेन राजाओं के शासन काल में वह विनष्टप्रायः हो गया। परिणामतः बंगाल के बहुत से जैन संस्कृति के निदर्शन भूमि गर्भ में समा गए या ध्वंश हो गए। यह इतना शोचनीय रूप में घटा कि प्राचीन जैन साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार यह नहीं जाना जाता कि बंगाल एक समय कई शताब्दियों तक जैन संस्कृति के प्रभाव में था अर्थात् इस देश के लक्ष-लक्ष व्यक्ति जैन धर्मावलम्बी या अनुरागी थे।

वर्तमान काल में गवेषणा, प्रत्नतात्विक अनुसन्धान एवं ऐतिहासिक पर्यालोचना के द्वारा बंगाल के वनों में, खण्डहरों में प्राप्त जीर्ण भग्न अवहेलित प्राचीन प्रस्तर-मूर्त्तियाँ, ध्वंश प्राप्त मठ, मन्दिर, स्तूप आदि में अधिकतर जैनों के हैं यह ज्ञात हुआ है। इसके पूर्व अनेकों की यह धारणा थी कि ये सब बौद्धों के हैं। यही इस प्रबन्ध का विषय है।

प्रसंगवश सर्वप्रथम बाँकुड़ा जिले का उल्लेख करना होगा। इस जिले के सभी स्थान जैन साहित्य में वर्णित लाढ़ सीमा के मध्य तीर्थंकर महावीर के समय में थे एवं उन्हें लाढ़ अंचल में जैन धर्म का प्रचार करते समय बहुत अत्याचार सहन करना पड़ा था। किन्तु अब लगता है कि उन्हीं स्थानों में जैन धर्म ने बाद में खूब प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

बाँकुड़ा जिले के बहुलाड़ा, हाड़मासरा शालतोड़, धराघाट, मौलबनि, अम्बिकानगर, सोनातोपाल आदि में इतनी अधिक संख्या में जैन मठ, मन्दिरों के ध्वंशावशेष, तीर्थंकर मूर्त्तियाँ पायी गयी हैं या आविष्कृत हुई हैं कि वे सब बंगाल के अन्यान्य जिलों की तुलना में सर्वापेक्षा अधिक लगती हैं। बहुलाड़ा ग्राम में सिद्धेश्वर के नाम से प्रसिद्ध मन्दिर पहले जैन मन्दिर था ऐसी धारणा आज के बहुत से मनीषियों ने की है। इस मन्दिर के गर्भगृह के सम्मुख शिवलिंग है, उसके पीछे गणेश और दसभुजा आदि हिन्दू

देवताओं के मध्य में या विशिष्ट स्थान में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की ४ फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है। उसे देखकर ऐसा नहीं लगता है कि उस मूर्ति को निराश्रित होने के कारण इस मन्दिर में स्थान मिला है। बल्कि ऐसा लगता है कि पहले यही एक मूर्ति इस मन्दिर में थी बाद में हिन्दू मूर्तियों को यहाँ प्रतिष्ठित किया गया है। इस विषय में श्रद्धेय श्री विनय घोषने अपनी 'पश्चिम बंगेर संस्कृति' नामक पुस्तक में जो मन्तव्य दिया है वह उद्धृत करता हूँ—"शैव धर्मियों की प्रधानता के पूर्व लगता है जैन और बौद्ध धर्मीय लोगों का भी प्रभुत्व बहुलाड़ा में रह चुका है।" सिद्धेश्वर मन्दिर के मध्य आज भी जिस मूर्ति का पूजन होता है वह जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ की मूर्त्ति है। इस मन्दिर के समीप ही भू-गर्भ से कितने ही स्तूप अविष्कृत हुए हैं। कोई-कोई इतिहासकार सोचते हैं कि ये सब बौद्ध सन्यासियों की समाधि है। किन्तु यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि जैनों में भी इस प्रकार समाधि स्तूपों का गठन होता था। स्तूप पूजा व आराधना जैनों ने बौद्धों से पूर्व प्रारम्भ की थी। बहुत से इतिहासकार कहते हैं भारत में जैन और बौद्ध युग के बहुत पूर्व भी स्तूप पूजा प्रचलित थी चाहे देवता के प्रतीक के रूप में या भक्ति भाजन परलोकगत व्यक्ति की समाधि के रूप में।

परेसनाथ ग्राम नाम से भी यह स्थान एक समय जैनों से सम्बन्धित था ऐसी धारणा बनती है। परेसनाथ से पत्थरों पर खोदी हुई बहुत-सी जैन मूर्तियाँ पायी गयी हैं। सबसे अधिक उल्लेखनीय है इस स्थान की छः फुट ऊँची पार्श्वनाथ की पाषाण प्रतिमा।

हाड़मासरा में सामान्य से अनुसन्धान में ही एक जैन तीर्थंकर की मूर्त्ति और एक जैन मन्दिर के ध्वंशावशेष आविष्कृत हुए हैं।

शालतोड़ ग्राम से कुछ दूर बिहारीनाथ पहाड़ की तलहटी में एक प्राचीन मन्दिर में एक विचित्र मूर्त्ति है। इसमें जैन तीर्थंकरों और विष्णुमूर्त्ति का सम्मिलित—मिश्रित रूप मिलता है। लगता है इस जिले के वैष्णव धर्म के प्राधान्य काल में तीर्थंकर मूर्त्ति के ऊपर ही विष्णु का मुखमण्डल बना दिया और उसकी देह के एक-दो अंश को खोदकर उसे हिन्दू मूर्त्ति में रूपान्तरित कर लिया गया है। ऐसी मूर्त्तियाँ अन्यत्र भी मिलती हैं।

धरापाट में एक जैन तीर्थंकर की मूर्त्ति हिन्दू रीति के अनुसार पूजी जाती है और एक मन्दिर की प्राचीर पर जैन तीर्थंकर की खोदी हुई मूर्त्ति है। पहले यह जैन उपासना का केन्द्र था। बाद में श्रीकृष्ण के पूजा स्थल रूप में परिवर्तित हो गया। मौलवनि ग्राम के मल्लेश्वर शिव मन्दिर के निकट और अन्य दो एक स्थान में बहुत से जैन निदर्शन मिलते हैं।

सोनातोपाल ग्राम में जो प्राचीन मन्दिर है उसमें मूर्त्ति न रहने पर भी स्थानीय लोगों में वंश परम्परागत यह धारणा प्रचलित है कि वह जैनों का एक पूजा स्थान है। इस ग्राम के कई स्थानों से भी जैन मूर्त्तियाँ आविष्कृत हुई हैं। किन्तु बाद में व्यवसायियों ने उन प्राचीन मूर्त्तियों को बेच दिया है।

पहाड़पुर (प्राचीन सोमपुर) राजशाही जिले में (अब बंगला देश) अवस्थित है। प्रत्नतात्विक खनन के फलस्वरूप इस स्थान के भू-गर्भ से प्रथम स्तर पर बौद्ध, और द्वितीय स्तर पर जैन संस्कृति के बहुत से निदर्शन आविष्कृत हुए हैं। जिनसे यह भलि-भाँति प्रमाणित होता है कि—प्राचीन काल में पहाड़पुर जैनों का एक धर्मकेन्द्र या तीर्थस्थान था। फिर इस स्थान को बौद्धों ने हस्तगत कर लिया। उस समय इस स्थान का बौद्ध विहार सोमपुर विहार नाम से प्रसिद्ध था। पहाड़पुर के द्वितीय स्तर से आविष्कृत ताम्रलिपि से जाना जाता है कि इस स्थान के एक ब्राह्मण दम्पति ने १५६वीं गुप्ताब्द (खृष्टीय ४७८-७६) में वट गोहाली नामक ग्राम में निर्ग्रन्थों के मठ-निर्माण के लिए जैन श्रमण गुहनन्दी को भूमिदान किया था।

पहाड़पुर के भू-गर्भ से २६ विभिन्न आकार के स्तूप भी आविष्कृत हुए हैं। इनका जैनों से सम्बन्धित होना ही सम्भव है।

मुर्शिदाबाद के फरक्का से सम्प्रति जैन धर्म संस्कृति के कई प्राचीन निदर्शन मिले हैं उनमें एक जलायी हुई भट्टी का फलक उल्लेख योग्य है। उस पर हंस मूर्त्ति खुदी हुई है। जैनों के स्थापत्य शिल्प में हंस का चित्र प्रायः ही पाया जाता है।

कासिमबाजार महाजन टोली में जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की मूर्त्ति है। वह हिन्दू विधान से पूजी जाती है। पुरूलिया जिले के पाकविडरा ग्राम में अष्टम जैन तीर्थंकर चन्द्रप्रभ स्वामी की ७॥ फुट ऊँची सुन्दर मूर्त्ति है। यह खृष्टीय नवम शताब्दी में निर्मित हुई थी यह भी जाना गया है।

वर्द्धमान जिले में मेमारी के निकट सात देउलिया एवं बराकर ग्राम में भी दो जैन मन्दिरों के ध्वंशावशेष और भग्नावस्था में जैन धर्म संस्कृति के बहुत से निदर्शन पाए जाते हैं।

वर्द्धमान जिले के अम्बिका नगर (कालना) की अम्बिका देवी प्रथमतः जैन देवी थी, अभी वर्त्तमान में यह देवी दुर्गा के रूप में पूजी जाती है। इसके स्वरूप के विषय में श्री विनय घोष ने अपनी 'पश्चिम बंगेर संस्कृति' पुस्तक में जो मन्तव्य दिया है वह उद्धृत करता हूँ—"असल में

अम्बिका है जैन धर्मवालों की विख्यात उपास्य देवी, बाद में यह बंगाल की कोमल धरती में दुर्गा में परिणत हो गयी।"[१]

चौबीस परगना जिले के दक्षिण प्रान्तिक अंश या सुन्दरवन सीमा के मध्य जैन धर्म संस्कृति के बहुत से निदर्शन पाए गए हैं। उन सबका विवरण देने के पूर्व दो एक बात कहना आवश्यक है। वर्तमान सुन्दरवन सीमा में बहुत से स्थान पहले खृष्टीय द्वादश शताब्दी में भी अरण्यमुक्त और समृद्ध जनपद पूर्ण थे और इनके अंशविशेष राढ़ और पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति के अन्तर्भुक्त थे।

इस जिले के डायमण्ड हार्बर महकमे में प्रायः दुर्गम ग्राम में दो प्राचीन ध्वंश स्तूप (गत शताब्दी में वन बसने के पश्चात् से) पाए जाते हैं। ये दोनों स्थान लोगों में मठवाड़ी के नाम से परिचित हैं। पहला घोष लोगों के चौक में वाइसहाटा ग्राम के प्रान्त में धान क्षेत्र का विराट स्थान अधिकृत किए हुए है। कुछ समय पूर्व इसकी उच्चता थी प्रायः बीस फुट। वर्तमान में कुछ ह्रास हो गया है। इसी वाइसहाटा की मठवाड़ी से कई मील दूर द्वितीय मठवाड़ी नलगोड़ा नामक ग्राम के समीप है। वर्तमान में यह ऐतिहासिक व प्रत्नतात्विकों के निकट परिचित 'जटार देउल' से ४-५ मील के मध्य है। अभी इस नलगोड़ा मठवाड़ी के समस्त चिह्न लुप्त होते जा रहे हैं स्थानीय लोगों के इससे ईंटें अपसारित कर देने के कारण। विख्यात प्रत्नतत्वविद् स्वर्गीय कालिदास दत्त महाशय ने दोनों मठवाड़ियों को देखकर अपना मन्तव्य दिया था कि ये दोनों ध्वंशावशेषों का जैन मठ होना ही सम्भव है। कारण इस अंचल में बहुत से जैन निदर्शन आविष्कृत हुए हैं। प्रसंगतः इस क्षेत्र में इस स्थान के इतिहास विख्यात जटार देउल का उल्लेख किया जा सकता है। कोई-कोई प्रत्नतात्विक अनुमान करते हैं उक्त जटा ग्राम के प्राचीन और विराट मन्दिर या जटार देउल जैनों के हैं। इसी अनुमान के समर्थन में कहा जाता है—अठारहवीं शताब्दी में इष्ट इण्डिया कम्पनी जब सुन्दरवन को अरण्यमुक्त करने को उद्योगी हुई उसी समय यह मन्दिर प्रकट हुआ। उस समय अंग्रेज सर्वेयर मि० स्मिथ ने जो विवरण दिया उसमें लिखा है कि उन्होंने जटा नामक अंचल के मन्दिर में एक ८-९ वर्ष के बालक की भाँति मूर्त्ति देखी थी। मूर्त्ति दण्डायमान थी। बाद में या वर्तमान में स्मिथ साहब वर्णित मूर्त्ति उक्त मन्दिर में दिखलाई नहीं पड़ती। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वह मूर्त्ति किसी जैन तीर्थंकर की थी। जटार देउल और बाँकुड़ा जिले के बहुलाड़ा के सिद्धेश्वर

[१] 'Iconography of the Jaina Goddess Ambica', U.P. Shah. *Journal of the Review of Bombay* vol. 9 Part 2, 1940.

मन्दिर में गठनगत समानता है। इन दोनों रेख देउल का निर्माणकाल भी प्रायः एक ही है। बहुलाड़ा के मन्दिर के विषय में बहुत-सी आलोचनाएँ और गवेषणाएँ हुई हैं। कुछ ऐतिहासिकों ने अपना अभिमत दिया है कि यह जैन मन्दिर है। किन्तु जटार देउल के विषय में अधिक गवेषणा नहीं हुई है। गवेषणा कार्य के लिए निर्भरयोग्य उपादान भी नहीं पाए गए हैं। वन हासिल करने के समय जो फलक प्राप्त हुआ उससे मालूम होता है उक्त मन्दिर राजा जयचन्द्र द्वारा शक-सम्वत् ८६७ में निर्मित है। यदि यह ठीक न भी हो तो खृष्टाब्द ६५७ में तो निर्मित है ही। बहुलाड़ा का सिद्धेश्वर मन्दिर जैन मन्दिर है ऐसा बहुत से गवेषकों का मन्तव्य है। जटार देउलके साथ कई विषयों में समानता होने से एवं जटा अंचल से जैन निदर्शनों के आविष्कृत होने के कारण यह अनुमान किया गया है कि जटार देउल जैनों का ही मन्दिर है। तीर्थंकर महावीरके समय से भद्रबाहु पर्यन्त (खृ० पू० पंचम्-षष्ठ शताब्दी से खृ० पू० चतुर्थ शताब्दी) जैन धर्म के प्रचार स्थानों में पुण्ड्रवर्द्धन का उल्लेख है। जटा का यह मन्दिर पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति में था यह ताम्रलिपि से जाना गया है।

इस स्थान से प्रायः १५-१६ मील दक्षिण पूर्व में सुन्दरवन की सीमा में देलवाड़ी या देउलवाड़ी जंगल में मन्दिरों का जो ध्वंशावशेष आविष्कृत हुआ है वह जैन मन्दिर था ऐसा कोई-कोई अनुसन्धानरत गवेषकों का अनुमान है। 'देउल' शब्द का अर्थ मन्दिर है। यह हिन्दू, बौद्ध या जैन मन्दिर के सम्बन्ध में प्रयुक्त हो सकता है। किन्तु प्रायः क्षेत्रों में लक्ष्य किया गया है कि देउल अर्थात् मन्दिर या मन्दिरयुक्त प्राचीन ग्राम से अतीत काल की सभ्यता के जो निदर्शन आविष्कृत हुए हैं उनमें अधिकांश जैन धर्म संस्कृति के परिचायक हैं। उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर सकते हैं वर्द्धमान जिले का सात देउलिया पुरूलिया का देउल या देउली।

चौबीस परगना जिले में कुछ दूर-दूर पर स्थित कई ग्रामों में जैनधर्म संस्कृति के निदर्शन देखे जाते हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जैनधर्म के प्राधान्य काल में इस अंचल में एक जैन समाज या जैनधर्म का केन्द्र था। ग्रामों के नाम यथाक्रम करञ्जलि, कांटावेनिया एवं घाटेश्वर है। मि० डेविड मैकाच्चन, श्री अमिय कुमार बन्दोपाध्याय आई० ए० एस० के साथ इस अंचल के भ्रमण काल में जिन जैन निदर्शनों को देखा था उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

करञ्जलि (ऐसी विशुद्ध भाषा किसी गाँव के नाम की नहीं सुनी जाती। इसी से धारणा की जा सकती है कि किसी समय यह गाँव समृद्ध था जो कि अब

वर्त्तमान में एक साधारण गाँव मात्र है।) गाँव में किसी-किसी भू-स्वामी के घर में कुछ पुरातत्व की वस्तुएँ रक्षित हैं। ये सब इसी अंचल से संग्रहित हैं। इनमें कई जैन संस्कृति के निदर्शन भी हैं। इसी ग्राम की एक पुष्करनी के तट पर दो वृहद् आकार के स्तम्भ या मन्दिर के खम्भे हैं। इस पर उत्कीर्ण कारुकार्य को लक्ष्य कर यह कहा जा सकता है कि ये जैन शिल्प के निदर्शन हैं। दोनों स्तम्भ जैन मन्दिर के हैं जो कि इसी ग्राम के भू-गर्भ में चला गया है। काँटा-वेनिया ग्राम से कुछ दूर एक गाँव में तीर्थंकर पार्श्वनाथ की एक अक्षत और सुन्दर मूर्त्ति प्रायः ४ फुट ऊँची है जो की यत्नपूर्वक मन्दिर में रखी हुई है। उसकी पूजा भी नित्य होती है किन्तु लौकिक देवता पञ्चानन्द मान कर। पहले इस मन्दिर में बकरे की बलि भी दी जाती थी।

कुछ दूर अवस्थित घाटेश्वर गाँव में आदिनाथ अर्थात् जैनधर्म के प्रवर्तक ऋषभनाथ की मूर्त्ति है।

घाटेश्वर ग्राम की आदिनाथ भगवान की मूर्त्ति यद्यपि जीर्ण हो गयी है फिर भी लक्षण और शिरस्त्राण को लक्ष्य करते हुए यह सिद्ध किया जा सकता है कि यह मूर्त्ति ऋषभनाथ की है। पद्म पर दण्डायमान, मस्तक पर मुकुटाकार जटाजूट, पार्श्व में उड्डीयमान गन्धर्व है। वृष लांछन एकदम अस्पष्ट हो गया है।

कैनिंग शहर से कुछ दूर मातला थाने के अधीन बोल बाउल ग्राम में अति जीर्ण अवस्था में प्रायः ५ फुट ऊँची जो जैन मूर्त्ति मिलती है वह पार्श्वनाथ की है। दक्षिण बारासात में इसी प्रकार की जीर्ण अवस्था में पार्श्वनाथ की एक मूर्त्ति उन्मुक्त स्थान में एकदम अवहेलित रूप में पड़ी है।

सुन्दरवन से कई जैन चौखुपी मन्दिर की क्षुद्र अनुकृतियाँ पायी गयी है। ये आठ से दस इंच ऊँची हैं। इनमें दो पाषाण की हैं अन्य हैं जली हुई मिट्टी की। चौखुपी चतुष्कोण है। इसके चारों ओर जैन तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं। चौखुपी शब्द चौमुख से आया है। जैन शिल्प का एक वैशिष्ट्य होता है चतुर्मुख या चौमुखी प्रतिमा।[२]

---

[२] "मूर्त्ति निर्माण शिल्प को जैनों का एक और अवदान है चतुर्मुख या चौमुख मूर्त्ति। मध्य में चैत्य वृक्ष या मन्दिर, उसके चारों ओर चार तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ। इस सर्वतोभद्र प्रतिमा निर्माण के आदर्श के पीछे है जैन समवसरण अर्थात् उपदेश सभा का आदर्श जहाँ मध्य में तीर्थंकर बैठते हैं। उस दिशा को छोड़कर अन्य तीन ओर उनकी प्रतिकृति रखी जाती है ताकि सभी को तीर्थंकर के दर्शन हो सकें।" —इन्द्र दुगड़, स्थापत्य और साहित्य में जैन प्रभाव।

बंगाल में सराक नाम से परिचित एक सम्प्रदाय का सन्धान मिला है। ये जीव हिंसा नहीं करते, निरामिष आहार करते हैं। वर्तमान में हिन्दू समाज-भुक्त होने पर भी उनके आचार और आचरण में जैन प्रभाव दिखाई देता है।

सराक शब्द श्रावक से उत्पन्न हुआ है। गृहस्थ जैन को श्रावक कहा जाता है। राढ़ अंचल में सराक सम्प्रदाय का अभी भी बहुत प्राधान्य है। मयूरभंज के रानीबाँध अंचल के सराकगण वर्तमान में भी महावीर मूर्त्ति की पूजा हिन्दू और जैन मिश्रित विधान से करते हैं।

वर्द्धमान जिले का नाम तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर के नामानुसार हुआ है ऐसा बहुत से मनीषियों का अनुमान है। श्री विनय घोष ने इस अनुमान का समर्थन किया है। यह उनकी 'पश्चिम बंगेर संस्कृति' नामक पुस्तक से जाना जाता है।

बंगाल के अवधूतों के धर्माचरण में जैन प्रभाव दिखाई देता है। इनमें कोई-कोई नग्न रहते हैं किन्तु जैन सम्प्रदायों की भाँति ये कृच्छ्र साधना नहीं करते। कुछ अवधूत संसार धर्म का पालन भी करते हैं।

अमृत, १२-१-७६

श्रीपाल

[पूर्वानुवृत्ति]

तृतीय दृश्य

[उज्जयिनी का बहिर्भाग। श्रीपाल का शिविर। श्रीपाल और मतिमन्द]

मतिमन्द : कुमार, मैंने मालवपति को आपका सन्देश निवेदन किया था। सुनकर प्रथम तो वे क्रोधित हो उठे। किन्तु, मन्त्रियों ने जब उन्हें आपकी सेना की विशालता और वास्तविक परिस्थिति का स्पष्टीकरण किया तो निरुपाय होकर उन्हें आपका आदेश मानना पड़ा। कन्धे पर कुल्हाड़ा लिए अब वे आपके पास ही आ रहे हैं।

[द्वारपाल आता है]

द्वारपाल : मालवराज प्रजापाल बाहर अपेक्षा कर रहे हैं।

श्रीपाल : उन्हें ससम्मान भीतर ले आओ।

[द्वारपाल जाता है। थोड़ी देर बाद प्रजापाल प्रवेश करते हैं]

श्रीपाल : [सम्मुख जाकर] आइए मालवपति, आइए। अब आपके सौहार्द्र का इच्छुक हूँ।

प्रजापाल : सौहार्द्र नहीं चम्पाधिपति, आनुगत्य। वह आनुगत्य बतलाने ही आया हूँ।

श्रीपाल : आप क्या कह रहे हैं मालवपति ? आप हमारे गुरुजन हैं।

प्रजापाल : आपका..... ?

श्रीपाल : हाँ मालवपति ! आपकी कन्या मैनासुन्दरी मेरी पत्नी है।

[दूसरी ओर से मैनासुन्दरी का प्रवेश]

मैनासुन्दरी : पिताजी ! पिताजी ! [प्रणाम करने बढ़ती है]

प्रजापाल : नहीं, नहीं, तू मेरा चरण स्पर्श मत कर। ओह ! मैं क्यों आज का यह दिन देखने को जीवित था। तू चम्पाधिपति की पत्नी है ? कुलकलंकिनी—

मैनासुन्दरी : पिताजी आप व्यर्थ ही क्रोधित हो रहे हैं। आपने ही तो मुझे इन्हें समर्पित किया था।

प्रजापाल : नहीं, कभी नहीं। हाय, मेरे ही दुष्कर्मों का यह परिणाम है।

श्रीपाल : मालवपति, आप ठीक से मुझे देखिए। मैं ही वह कुष्ठरोगाक्रान्त उम्बर राणा हूँ।

प्रजापाल : आप ? आप ?

श्रीपाल : हाँ मैं।

प्रजापाल : हाँ तुम्हीं हो। [मैना की ओर देखकर] बेटी, अब तू मुझे क्षमा कर। [मैना प्रणाम करती है] उस दिन तूने राज सभा में जो बात कही थी वह अक्षरशः सत्य है। कितने अज्ञान और अहंकार में था मैं ? तुझे दुःख देने में मैंने तो कोई त्रुटि ही नहीं रखी थी। किन्तु तूने उस चरम दुःख को भी भाग्यबल से सुख में परिणत कर लिया है। देख रहा हूँ, मनुष्य जो सुख-दुःख भोग करता है, वह अपने भाग्य बल से ही भोगता है। न कोई धनी को निर्धन बना सकता है न दरिद्र को राजा। सुरसुन्दरी का विवाह मैंने उच्च कुल में ही किया था किन्तु, पता ही नहीं चला कि वह आज कहाँ है ?

मैनासुन्दरी : क्यों ?

प्रजापाल : क्या बताऊँ बेटी ? यहाँ से विदा होकर शंखपुर जाने के मार्ग में ही दस्युओं ने उसे लूट लिया था। उसके बाद मैंने बहुत दौड़ धूप करवायी, खोज करवायी लेकिन उसका कहीं पता ही नहीं चला।

मैनासुन्दरी : ज्ञानियों ने ठीक ही तो कहा है, कितना असहाय और दुर्बल है मानव।

प्रजापाल : [अश्रु पोंछते हुए] अच्छा बेटी, तो मैं चलूँ ?

मैनासुन्दरी : नहीं पिताजी, आपकी अभ्यर्थना के लिए हमलोगों ने एक सामान्य से उत्सव का आयोजन किया है। वह देखकर आपको अल्पाहार भी लेना होगा।

प्रजापाल : नहीं मैना, नहीं। [श्रीपाल की ओर देखकर] देखो श्रीपाल, अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। तुमलोग मुझे जाने की अनुमति दो।

श्रीपाल : अनुमति देने का अधिकार आज मुझे नहीं, मैना को है। आयोजन के विषय में तो मैना ने आपको बता ही दिया है। आइए इस सिंहासन पर बैठिए। [उन्हें ले जाकर श्रीपाल सिंहासन पर बैठाते हैं और मतिमन्द की ओर मुड़कर] मतिमन्द, नट मण्डली को उपस्थित होने को कहो। [मतिमन्द जाता है एवं नटों के साथ नटी आती है। नृत्य करने के पूर्व नटी फूट-फूटकर रोने लगती है। मैनासुन्दरी उसके समीप पहुँच कर नटी का मुँह ऊपर उठाती है]

मैनासुन्दरी : अरे, यह तो सुरसुन्दरी है !

सुरसुन्दरी : [मैनासुन्दरी से लिपटकर] हाँ मैं सुरसुन्दरी हूँ। [नट एक ओर हो जाते हैं, श्रीपाल और प्रजापाल उसके समीप आते हैं]

मैनासुन्दरी : रो मत बहन। रो मत। सोच ले अब तेरे दुर्भाग्य का अन्त आ गया है।

सुरसुन्दरी : लगता है जीजी, मेरे दुर्भाग्य का अन्त नहीं होगा। उस दिन तुम्हारे दुर्भाग्य को देखकर मैं हँसी थी। मन ही मन अपने भाग्य पर फूल उठी थी तभी तो आज नटी बनकर नृत्य करना पड़ रहा है।

मैनासुन्दरी : बहन, जो होनहार है वह होता ही है। अब हम वही चेष्टा करेंगे जिससे तू सुखी बन सके।

श्रीपाल : अवश्य ही करेंगे। मैं स्वयं जाकर तुम्हें अरिदमन के हाथों सौंप आऊँगा।

मैनासुन्दरी : चल बहन, भीतर चल। [भीतर जाती है]

प्रजापाल : सचमुच ! मनुष्य का भाग्य ही बलवान होता है। मनुष्य तो भाग्य के हाथों का खिलौना है।

चतुर्थ दृश्य

[चम्पा की राजसभा। सपरिषद् अजितसेन बैठे हैं। श्रीपाल का दूत चतुर्मुख आता है]

चतुर्मुख : महाराज की जय।

अजितसेन : क्या सम्वाद लाए हो दूत ?

चतुर्मुख : महाराज कुमार श्रीपाल ने कहलवाया है आपने उन्हें विदेश में जिन विद्याओं को सीखने के लिए भेजा था वे सभी विद्याएँ उन्होंने अर्जित कर ली हैं।

अजितसेन : वाह, बहुत खूब ? मैंने कब उसे विद्यार्जन के लिए भेजा था ? निरीह शिशु समझकर ही दयावश उसे छोड़ दिया था—क्यों वृषसेन ?

वृषसेन : आप ठीक कह रहे हैं महाराज ! निरीह शिशु समझकर ही तो आपने उसे छोड़ दिया था।

अजितसेन : उसने विद्यार्जन कर ली अच्छा ही किया। क्या कहते हो वृषसेन ? [दूत की ओर देखकर] अब वह क्या चाहता है ?

चतुर्मुख : अपने लिए वे कुछ नहीं चाहते। फिर भी अब आपकी उम्र हो गयी है। अतः विश्राम की आवश्यकता है। वे आपके मंगल के लिए इस राज्यभार को हटाकर आपके कन्धों को हल्का करना चाहते हैं।

अजितसेन : क्या कहा ?

चतुर्मुख : कुमार श्रीपाल ने एक विराट सैन्यदल एकत्रित किया है। अब कई नरेश उनके आश्रय में है। आपको भी उन्हीं का अनुसरण करना उचित है।

अजितसेन : अच्छा तो यह बात है।

चतुर्मुख : यदि आपने ऐसा न कर विरोध किया तो वे मुहूर्त मात्र में इस अनर्थक विरोध का अवसान घटा सकते हैं। क्योंकि उनमें और आपमें बहुत पार्थक्य है। कहाँ पर्वत तुल्य वे कहाँ धूलिकण सम आप। कहाँ शरद् पूर्णिमा का रजत चन्द्र और कहाँ टिमटिमाता क्षीण तारा। कहाँ सहस्रमाली सूर्य और कहाँ सामान्य-सा खद्योत।

अजितसेन : बहुत हो गया दूत। दूत होने के कारण ही तुम्हारी इस धृष्टता को मैं सह गया। नहीं तो···

चतुर्मुख : महाराज मैं ठहरा दूत। मैंने तो अपने स्वामी का वक्तव्यमात्र उपस्थित किया है। उन्होंने कहा है—"यदि आपको प्राणों की ममता है तो उनका राज्य उन्हें ही सौंप दें; नहीं तो युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाएँ।" फिर भी स्मरण रखिए कुमार श्रीपाल की सेना के सम्मुख आपकी सेना समुद्र के सम्मुख गोष्पद-सी है।

अजितसेन : बड़े दुस्साहसी हो तुम। जाओ श्रीपाल से कहो कि अजितसेन निवीर्य नहीं है। केवल वाक्यवाणों से चम्पाराज्य अधिगत नहीं किया जा सकता। उसने सोए हुए सिंह को जागृत किया है। मैं युद्ध के लिए श्रीपाल को आमन्त्रित करता हूँ। रणक्षेत्र में ही अब उससे साक्षात्कार होगा।

चतुर्मुख : महाराज, एक बार और गम्भीरता से सोचिए। अनर्थक रक्तपात कुमार श्रीपाल नहीं चाहते। फिर पराजित होने से आपको अपयश मिलेगा। उनकी इच्छा है आपको उस अपयश से बचाने की।

अजितसेन : चुप हो जाओ दूत। अब यदि अधिक कुछ कहा तो यहाँ से बाहर निकाल दिए जाओगे।

चतुर्मुख : तब मैं जा सकता हूँ ?

अजितसेन : हाँ, जा सकते हो।

[दूत चला जाता है]

अजितसेन : [सेनापति की ओर देखकर] कीर्तिपाल, सेना तैयार करो।

कीर्तिपाल : जो आज्ञा महाराज।

पंचम दृश्य

[रणक्षेत्र]

अजितसेन : वृषसेन, जहाँ तक दृष्टि प्रसारित करता हूँ, वहाँ तक केवल श्रीपाल ही श्रीपाल की सेना दिखाई पड़ती है, इतनी सेना उसने कहाँ से एकत्रित की ?

वृषसेन : महाराज, लगता है इस युद्ध के लिए न आना ही श्रेयस्कर था। उज्जयिनी, कौशाम्बी और श्रीपाल की अपनी सेना मिलकर प्रायः लक्षाधिक सैनिक हैं। और इधर चम्पा की सेना है केवल तीस हजार। ये देखिए हमारा सैन्यदल पीछे लौट रहा है। नहीं, नहीं, इस दुर्वार शत्रु सैन्य को रोकना बहुत कठिन है। अभी भी समय है महाराज, दूत भेजकर सन्धि का प्रस्ताव करिए।

अजितसेन : यह नहीं हो सकता वृषसेन। क्षत्रियों के लिए अधीनता स्वीकार करने की अपेक्षा पराजय कम ग्लानिकर होती है।

[सम्वादवाहक आता है]

सम्वाद वाहक : श्रीपाल की विशाल सेना का प्रतिरोध करने में हमारी सेना असमर्थ हो गयी है। हमारा व्यूहमुख टूट गया है। महाराज····

अजितसेन : सेनापति कीर्तिपाल को व्यूहमुख और दृढ़ करने को कहो। जैसे भी हो श्रीपाल के आक्रमण को प्रतिहत करना होगा। जाओ शीघ्र जाओ—ठहरो मैं भी आता हूँ।

[अजितसेन सम्वाद-वाहक के पीछे-पीछे चले जाते हैं]

वृषसेन : अब इस युद्ध क्षेत्र में मेरा खड़ा रहना उचित नहीं है। [वृषसेन का प्रस्थान। दूसरी ओर से सुजन, मंगल और अन्य दो सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए अजितसेन का प्रवेश]

सुजन : अस्त्र परित्याग कीजिए नहीं तो—

अजितसेन : तुम हमारी हत्या करोगे ? क्षत्रियों के लिए मृत्यु भय कैसा ?

सुजन : प्रशंसा करता हूँ आपके साहस की। दुःख है आपकी हत्या करने को कुमार श्रीपाल ने निषेध किया है। नहीं तो कभी का····

अजितसेन : हा, हा, हा, हा, निषेध ? किन्तु क्यों ?

सुजन : कारण आप उनके चाचा हैं। सावधान—[मंगल की तलवार के आघात से अजितसेन की तलवार छूटकर दूर जा पड़ती है। तभी उन्हें तीन सैनिक घेर लेते हैं]

प्रथम सैनिक : अब आप हमारे बन्दी हैं।

षष्ठ दृश्य

[श्रीपाल का शिविर। कुमार श्रीपाल बैठे हैं। द्वारपाल आता है]

द्वारपाल : सुजन और मंगल बन्दी अजितसेन को ले आए हैं।

श्रीपाल : उन्हें भीतर आने को कहो।

द्वारपाल : जो आज्ञा !

[द्वारपाल जाता है। थोड़ी देर में सुजन और मंगल अजितसेन को लिए प्रवेश करते हैं। श्रीपाल स्व हाथों से उन्हें बन्धन मुक्त करते हैं]

श्रीपाल : चाचाजी, आप इसके लिए कोई क्षोभ न करें। आप केवल मुक्त ही नहीं हैं, चम्पा पर आप जिस प्रकार शासन कर रहे थे उसी प्रकार शासन अब भी करें। मुझे राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने पितृराज इसलिए अधिगत करना चाहा था कि

नहीं तो संसार में मेरा अपयश होता। लोग कहते श्रीपाल वीर नहीं है। वह अपना राज्य पुनः प्राप्त न कर सका। अब लोग ऐसा नहीं कह सकेंगे।

अजितसेन : श्रीपाल, तूने आज मेरी आँखें खोल दीं। कहाँ मैं जिसने तेरा पितृराज्य छीन लिया और तेरी हत्या भी करना चाहता था और कहाँ तू। कहते हैं गोत्र द्रोह करने से कीर्त्ति नाश होती है, राजद्रोह करने से नीति और बालद्रोह करने से सद्गति। किन्तु मैंने तो ये तीनों ही अपराध किए हैं। नहीं श्रीपाल, अब मुझे इस राज्य की आवश्यकता नहीं है। अब मैं प्रव्रज्या ग्रहण कर अपने निकृष्ट पापों का प्रायश्चित करूँगा ताकि अपना भविष्य निर्माण कर सकूँ। तू राजा बन, सुखी बन, यही मेरा आशीर्वाद है।

[चारों ओर श्रीपाल की जय ध्वनि होती है]

जीव [२]

[पूर्वानुवृत्ति]

—हरिसत्य भट्टाचार्य

'द्रव्य संग्रह' के कथनानुसार जीव उपयोगमय, अमूर्त, कर्त्ता, स्वदेह-परिमाण, भोक्ता, संसारस्थ, सिद्ध और स्वभावतः ऊर्ध्वगामी है।

'तत्वार्थसार' में इसके अनेक भेदों का वर्णन है—

सामान्यादेकधा जीवो बद्धो मुक्तस्ततो द्विधा।
स एवासिद्धनोसिद्धसिद्धत्वात् कीर्त्यते त्रिधा॥
श्वभ्रतिर्यङ्नरामर्त्यविकल्पात्स चतुर्विधः।
प्रशमक्षयतद्द्वन्द्वपरिणामोदयो भवेत्॥
भावपंचविधत्वात् स पंचभेदः प्ररूप्यते।
षण्मार्गगमनात् षोढ़ा सप्तधा सप्तभंगतः॥
अष्टधाष्टगुणात्मत्वादष्टकर्मकृतोपि च।
पदार्थनवकात्मत्वात् नवधा दशधा तु सः॥
दृशजीवभिदात्मत्वादिति चिन्त्यं यथागमम्।

—तत्वार्थसार, ३२४-३२७

सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो जीव एक ही प्रकार के हैं। उसमें भी बद्ध और मुक्त ऐसे दो भेद होने से जीव दो प्रकार के हैं। असिद्ध, नोसिद्ध और सिद्ध भेद से जीव के तीन भेद हैं। गतिभेद से जीव चार पर्याय में विभक्त है—देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच। और उपशम, क्षय, क्षयोपशम, परिणाम और उदय—इन भाव भेदों से जीव पाँच प्रकार के हैं। ज्ञानमार्ग की दृष्टि से जीव के छः विभाग कर सकते हैं। और सप्तभंगी के भंगानुसार उसके सात भेद होते हैं। जीव के स्वाभाविक आठ गुण के अनुसार अथवा प्रकृति के अनुसार उसके आठ भेद कर सकते हैं। नौ पदार्थों के विचार से जीव नौ तरह के और दश प्रकार के प्राण के अनुसार दस प्रकार के होते हैं, ऐसा भी कह सकते हैं।

जीवत्व को भली-भाँति समझने के लिए इन भागों पर भी विचार करना चाहिए।

एक प्रकार के जीव

सामान्य दृष्टि से सभी जीव एक ही प्रकार के हैं ऐसा कहें तो अनुचित न होगा। इस सामान्य को उपयोग कहते हैं। जीवमात्र उपयोग का अधिकारी है। उपयोग के दर्शन और ज्ञान ये दो भेद हैं। विशेष ज्ञान विरहित सत्तामात्र के बोध को दर्शन कहते हैं। वस्तु-विषयक सविशेष बोध का नाम ज्ञान है। ज्ञान के दो भेद हैं—प्रमाण और नय। समस्त वस्तु सम्बन्धी सम्यग् ज्ञान का नाम नय है। प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष नामक दो भेद हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण की अपेक्षा परोक्ष प्रमाण अस्पष्ट होता है। अवधि, मनः पर्याय और केवल यह तीन प्रकार का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना रूपी पदार्थों का जो ज्ञान होता है—उसे अवधि ज्ञान कहते हैं। इन्द्रियादि की अपेक्षा बिना, दूसरों के चित्त के सम्बन्ध में जो ज्ञान होता है वह मनः पर्याय ज्ञान कहलाता है। विश्व की समस्त वस्तुओं और पर्यायों के प्रत्यक्ष ज्ञान का नाम केवल ज्ञान है।

मति और श्रुत के भेद से परोक्ष प्रमाण के दो भेद हैं। जिस ज्ञान में इन्द्रिय अथवा अनिन्द्रिय (मन) सहायक हो उसे मतिज्ञान कहते हैं। मतिज्ञान में इन्द्रिय ज्ञान, स्वसंवेदन, स्मरण, प्रत्यभिज्ञान, ऊह और अनुमान का समावेश होता है। दर्शन निराकार ज्ञान है। मतिज्ञान साकार ज्ञान है। मतिज्ञान के चार प्रकार है—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इन्हें मतिज्ञान के चार दर्जे कह सकते हैं। अवग्रह मतिज्ञान का नीचे से नीचा दर्जा है। इसके द्वारा विषय के अवान्तर सामान्य (जाति) मात्र का बोध होता है। अवग्रहीत विषय के विशेष समूह सम्बन्धी जानकारी की स्पृहा का नाम ईहा है। विषय के विशेष ज्ञान को अवाय कहते हैं। विषय ज्ञान को धारण किए रहने को धारणा कहते हैं। इन्द्रिय और मन की सहायता से होनेवाला ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान है। इन्द्रिय-निरपेक्ष, सुख-दुःखादि की अन्तर अनुभूति को अनिन्द्रिय ज्ञान अथवा स्व-संवेदन कहते हैं। अनुभूत विषय का पुनः बोध होना स्मरण कहलाता है। सदृश अथवा विसदृश विषयों से सम्बन्ध रखने वाला संकलनात्मक ज्ञान प्रत्यभिज्ञान है। विशेषाकार विज्ञानों में से जो त्रिकाल विषयक ज्ञान होता है उसका नाम ऊह अथवा तर्क है। तर्कलब्ध विज्ञान से 'यह पर्वत अग्निवाला है' इस प्रकार का जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहते हैं। श्रुतज्ञान का समावेश परोक्ष प्रमाण में होता है। आप्त पुरुष की वचनावली को श्रुतज्ञान कहते हैं। विषय सम्बन्धी एकदेशीय ज्ञान नय कहलाता है। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक भेद से नय भी दो प्रकार का

होता है। द्रव्यार्थिक नय का विषय द्रव्य, और पर्यायार्थिक नय का विषय पर्याय है। नैगम नय, संग्रह नय और व्यवहार नय—ये द्रव्यार्थिक नय के अन्तर्गत हैं। नैगम नय उद्देश्य को बतलाता है। संग्रह नय वस्तुओं के सामान्य अंश का और व्यवहार नय विशेष अंश का ग्रहण करता है। ऋजुसूत्र, शब्द समभिरूढ़ एवं एवंभूत ये पर्यायार्थिक नय के चार भेद हैं। वस्तु के वर्तमान कालवर्त्ती पर्याय के साथ ऋजुसूत्र का सम्बन्ध है। शब्दनय के अनुसार एकार्थ-वाचक शब्दों से एक ही अर्थ का बोध होता है। समभिरूढ़ नय के अनुसार एकार्थवाचक शब्दों से लिंग, धातु, प्रत्ययादि भेद से पृथक-पृथक अर्थ द्योतित होते हैं। एवंभूत नय प्रत्येक शब्द की क्रिया बतलाता है। वस्तु के क्रियाहीन होने पर उस शब्द द्वारा उसकी पहिचान करने का अधिकार नहीं रहता।

प्रमाण के प्रत्यक्ष और परोक्ष, ये दो भेद हैं। प्रमाण और नय ज्ञान के भीतर समा जाते हैं। ज्ञान और दर्शन उपयोग के प्रकार भेद हैं। इस उपयोग की दृष्टि से जीव एक प्रकार के हैं, ऐसा कहा जा सकता है।

दो प्रकार के जीव

संसारी और मुक्त के भेद से जीव के दो प्रकार हैं। कर्म फंद में फंसा हुआ जीव संसारी और कर्मशून्य जीव मुक्त कहलाता है। संसारी जीव कर्म-युक्त हैं, तथापि सभी संसारी जीव एक ही श्रेणी के हैं, ऐसा नहीं कह सकते। संसारी जीवों में भी कर्म भेद, पर्याय भेद है। इस कर्मभेद को समझाने के लिए जैनाचार्यों ने चौदह गुणस्थानों की योजना की है। जिन दर्जों से होता हुआ, अथवा जिन अवस्थाओं को पार करके भव्य जीव धीमें-धीमें मुक्तिमार्ग में आगे बढ़ता है उन दर्जों अथवा अवस्थाओं का नाम गुणस्थान है। प्रत्येक संसारी जीव किसी न किसी एक गुणस्थान में अवस्थित होता है। १४ गुण-स्थानों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) मिथ्यादृष्टि, (२) सास्वादन, (३) मिश्र, (४) असंयत [अविरति], (५) देश संयत [देशविरति], (६) प्रमत्त [सर्वविरति], (७) अप्रमत्त [संयत], (८) अपूर्वकरण, (९) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्म कषाय, (११) उपशांत कषाय [उपशांत मोह], (१२) संक्षीण कषाय [क्षीणमोह], (१३) सयोग केवली और (१४) अयोग केवली।

मिथ्या दर्शन नामक कर्म के उदय से जीव मिथ्यात्व में श्रद्धा रखता है और सत्य तत्व की जिज्ञासा नहीं रखता। यह मिथ्या दृष्टि प्रथम गुणस्थान है। मिथ्यादर्शन कर्म का उदय न हो, किन्तु अनन्तानुबन्धी कर्म के उदय से

जीव को सम्यग् दर्शन न हो (वह सम्यग् दर्शन से पतित हो जाय) तो उसे सास्वादन नामक दूसरा गुणस्थान कहते हैं। तीसरे गुणस्थान मिश्र में सम्यग् मिथ्यात्व (मिश्रमोह) नामक कर्म के उदय से जीव का दर्शन कुछ अंशों में मलिन और कुछ अंशों में शुद्ध होता है। अप्रत्याख्यानावरण नामक कषाय के उदय के कारण जीव सम्यक्त्व संयुक्त होते हुए भी अविरत रहे यह असंयत नामक चौथा गुणस्थान है। अप्रत्याख्यान-आवरण नामक कषाय का उदय बन्द हो जाय और जीव कुछ अंशों में संयत और कुछ अंशों में असंयत रहे यह देश संयत नामक पाँचवाँ गुणस्थान कहलाता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय क्षीण हो जाने पर भी—जीव पूर्णतः संयत हो जाए तो भी—उसमें भी प्रमाद रह जाय यह प्रमत्त संयत नामक छठा गुणस्थान है। इसके पश्चात् संज्वलन नामक कषाय नष्ट होने पर (मन्द होने पर) पूर्ण संयत जीव प्रमाद के चंगुल से छुटकारा पा जावे तो वह अप्रमत्त नामक सप्तम् गुणस्थान को प्राप्त होता है। मोक्षमार्ग का यात्री क्रमशः अपूर्व शुक्ल ध्यान को प्राप्त करके विशुद्धि को प्राप्त करे, यह अपूर्वकरण गुणस्थान है। यह अपूर्व शुक्ल ध्यान खूब-खूब बढ़ता हुआ जब मोह कर्म—समूह के स्थूल अंशों को क्षीण कर देता है तब जीव अनिवृत्तिकरण नामक नवम् गुणस्थान पर जा पहुँचता है। इस प्रकार कषायों को हल्का करता हुआ जीव सूक्ष्म कषाय गुणस्थान को प्राप्त करता है। सर्व प्रकार के मोह उपशांत होने पर जीव जिस गुणस्थान को प्राप्त करता है उसका नाम उपशांत कषाय है। मोह समूह के पूर्णतः क्षय होने पर जीव बारहवें गुणस्थान को प्राप्त होता है, जिसका नाम क्षीण कषाय है। इसके पश्चात् चार प्रकार के घाति कर्म नष्ट होने पर जीव को निर्मल केवल ज्ञान प्राप्त होता है। यह सयोग केवली नामक तेरहवां गुणस्थान है। सर्व प्रकार के कर्मों का क्षय होने से पूर्व की अत्यल्प क्षण व्यापी जो अवस्था वह चौदहवाँ गुणस्थान है। उसे अयोग केवली कहते हैं। यहाँ पहुँचकर कर्म सम्बन्ध पूरा हो जाता है।

संसारी जीव उपरोक्त चतुर्दश गुणस्थानों में से किसी न किसी एक स्थान में होता है।

चतुर्दश गुणस्थानों से भी परे जो अनन्त सुखमय, अनिर्वचनीय अवस्था है वही मुक्तावस्था है। समस्त कर्मों के संस्पर्श से अलग होकर सिद्ध, लोकाकाश के शिखर पर, सिद्ध शिला पर, विराजमान होते हैं। सिद्ध संसार-सागर को पार कर लेते हैं। वे मुक्त कहलाते हैं।

तीन प्रकार के जीव

संसारी, सिद्ध और नोसिद्ध—जीवन्मुक्त इन तीन प्रकार से जीव के तीन भेद किए जा सकते हैं। कर्म संयुक्त जीव संसारी जीव है। कर्म दो प्रकार के होते हैं—घाती और अघाती। मुक्ति मार्ग का यात्री क्रमशः अपने कर्म बन्धनों को शिथिल करता हुआ जिस पवित्र क्षण में तेरहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है तब वह संसार त्यागी साधक चार प्रकार के घाती कर्मों को तोड़ देता है। एक प्रकार से वह जीवन्मुक्त हो जाता है। परन्तु अघाती कर्म का संयोग उस समय भी रहता है अतएव उस वक्त वह सयोग केवली अथवा पूर्णतः मुक्त न होने के कारण नोसिद्ध भी कहलाता है। जीवन्मुक्त एक दृष्टि से मुक्त ही है, परन्तु पार्थिव शरीर अवशिष्ट रहने के कारण यह तीसरा भेद किया गया है। घाती कर्म के विनाश से जीवन्मुक्त को केवल ज्ञान प्राप्त होता है। वह सर्वज्ञता प्राप्त कर लेता है; अथवा वह अनन्त-दर्शन, अनन्त-सुख, अनन्त-ज्ञान और अनन्त-वीर्य का अधिकारी हो जाता है।

जीवन्मुक्त सर्वज्ञ के दो भेद हैं—सामान्य केवली और अर्हत्। सामान्य केवली केवल अपनी मुक्ति की ही साधना करता है। अर्हत् संसार के समस्त जीवों की मुक्ति के लिए उपदेश देता है। अर्हत् को ही तीर्थंकर कहते हैं। संसार-सागर में गोते खाते हुए जीवों के लिए उपदेशमय तीर्थ का निर्माण तीर्थंकर ही करते हैं। वे साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका इन चारों संघ-विभागों को उपदेश देते हैं। तीर्थंकर जब माता के गर्भ में आते हैं, जन्म लेते हैं, दीक्षा लेते हैं, सर्वज्ञता प्राप्त करते हैं और निर्वाण को प्राप्त होते हैं तब इन्द्रादि देव महोत्सव पूर्वक उनकी पूजा (अर्हा) करते हैं इसीलिए उन्हें "अर्हत्" भी कहते हैं। इन महापुरुषों को देह का रत्ती भर भी ममत्व नहीं होता। तथापि उनका शरीर अति शुभ्र सहस्र सूर्यों के समान समुज्ज्वल होता है। वह पूर्णतः निर्दोष होता है। भगवान तीर्थंकरों को चार प्रकार के अतिशय भी होते हैं। अर्हत् अथवा तीर्थंकर प्रत्यक्ष ईश्वर स्वरूप होते हैं।

तदनन्तर जब सर्वज्ञ पुरुष के अघाती कर्म नष्ट हो जाते हैं तब वह कर्म बन्धन से मुक्त होकर, संसार रूपी कारावास से निकलकर, लोक शिखर पर स्थित, चिर शान्तिमय सिद्ध शिला पर विराजमान होते हैं। यही जीव की अन्तिम अवस्था है—परामुक्ति है। सिद्ध के जीवों को किसी प्रकार का कर्म-मल नहीं होता। वे आत्मा के विशुद्ध स्वभाव में ही रहते हैं। वे प्रथम कथित अव्याबाध आदि आठ प्रकार के गुणों के अधिकारी हो जाते हैं।

चार प्रकार के जीव

गतिभेद से जीव चार भेदों में विभक्त हैं—देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यंच।

देव के चार भेद हैं—(१) भवनवासी, (२) व्यंतर, (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक।

भवनवासी के दस भेद हैं—(१) असुर कुमार, (२) नाग कुमार, (३) विद्युत कुमार, (४) सुवर्ण कुमार, (५) अग्नि कुमार, (६) वात कुमार, (७) स्तनित कुमार, (८) उदधि कुमार, (९) द्वीप कुमार और (१०) दिक् कुमार।

व्यंतर के आठ भेद हैं—(१) किन्नर, (२) किंपुरुष, (३) महोरग, (४) गंधर्व, (५) यक्ष, (६) राक्षस, (७) भूत और (८) पिशाच।

ज्योतिष्क के पाँच प्रकार हैं—(१) सूर्य, (२) चन्द्र, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र और (५) तारक।

वैमानिक दो प्रकार के हैं—(१) कल्पोत्पन्न और (२) कल्पातीत।

घर्मा नामक नरक के तीन भाग हैं। पहिले भाग का नाम 'खर भाग' दूसरे का 'पंक भाग' और तीसरे का 'अब्बहुल' है। घर्मा नरक के पहिले और दूसरे भाग में समस्त भवनवासी देवों के भवन अर्थात् वासस्थान है। विविध देशादिकों में वास करने के कारण दूसरे प्रकार के देव व्यंतर कहलाते हैं। रत्नप्रभा नामक नरक के दूसरे भाग में राक्षस नाम के व्यंतर रहते हैं। शेष सात प्रकार के व्यंतर इस नरक के प्रथम भाग—खर भाग में रहते हैं। इसके अतिरिक्त व्यंतर बहुत से पर्वत, गुफा, सागर, अरण्य, वृक्ष कोटर और मार्ग आदि में रहते हैं। भूमितल से लेकर मध्य लोक के अन्तरवर्ती विशाल आकाश में ज्योतिष्क रहते हैं। भूमि भाग से ७९० योजन के भीतर एक भी ज्योतिष्क देव नहीं हैं। ७९० योजन से आगे तारागण हैं। भूतल से ८०० योजन दूर सूर्य विमान हैं। सूर्य से कोई ८० योजन ऊपर चन्द्र है। चन्द्र से तीन योजन ऊपर नक्षत्र हैं। नक्षत्रों से तीन योजन ऊपर बुध ग्रह; उससे तीन योजन ऊपर शुक्र; उससे तीन योजन ऊपर वृहस्पति; उससे चार योजन आगे मंगल और मंगल से चार योजन ऊपर शनिश्चर ग्रह है। इस प्रकार भूतल से ७९० योजन की ऊँचाई पर ११० योजन के भीतर ज्योतिश्चक्र है। सूर्य विमान तप्त सुवर्ण के समान है। इसका आकार अर्द्ध गोलाकार और व्यास ४८ योजन से भी कुछ अधिक है। सूर्य विमान की परिधि व्यास के तीन गुने से कुछ अधिक है। १६ हजार सेवक सूर्य विमान को धारण किये हैं। इस विमान में सूर्यदेव अपने परिवार के साथ रहते हैं। [क्रमशः

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ

[पूर्वानुवृत्ति]

गुजराती : कन्हैयालाल भाईशंकर दवे अनु० भँवरलाल नाहटा

सुविधिनाथ

ये नौवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन मकर (मगर), यक्ष अजित और शासनदेवी सुतारा है। इन को पुष्पदन्त भी कहा जाता है।

अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा सुविधिनाथ जी की प्रतिमाएँ थोड़ी मिलती हैं। प्रभास पाटण में इनका मन्दिर है, जिसमें ये मूलनायक रूप में विराजित हैं। अहमदाबाद की रतनपोल में स्थित वाघणपोल में सुविधिनाथ भगवान का मन्दिर है, जिसकी प्रतिमा प्राचीन है। इसके सिवा आबू पर लूणगवसही की देहरी न० ४४ में, खंभात में शेरड़ी वाला की पोलवाले देरासर में, गिरनार पर संग्राम सोनी की टूंक में तथा शंखेश्वर जी की देहरी न० ३४ में स्थापित सुविधिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ अनन्य हैं।

शीतलनाथ

ये दशवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन श्रीवत्स, यक्ष ब्रह्मा और शासनदेवी अशोका है।

आबू पर विमलवसही की देहरी न० ३७ में शीतलनाथ जी की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। अहमदाबाद की महुरत पोल में शीतलनाथ भगवान का मन्दिर है। इसके सिवा वंथली में, अकलेश्वर में, खंभात में कुंभार वाड़ा के अन्दर व पाटण के मणियाती पाड़ा में, खेतरपाल के पाड़े में शीतलनाथ भगवान के जिनालय हैं जहाँ उनकी दर्शनीय प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित हैं। गुजरात में शीतलनाथ स्वामी की संख्याबद्ध प्रतिमाएँ मिलती हैं किन्तु आदीश्वर, पार्श्वनाथ आदि की अपेक्षा इनकी संख्या अल्प ही है।

श्रेयांसनाथ

ये ग्यारहवें तीर्थंकर हैं। इनका मूल नाम विष्णु था जो बाद में श्रेयांस नाम से विख्यात हो गया। इनका लांछन गैंडा—खड्गी जीव, यक्ष यक्ष, मानवी यक्षिणी एवं दिगम्बर मतानुसार ईश्वर यक्ष और शासनदेवी गौरी है।

इन तीर्थंकर की अत्यल्प प्रतिमाएँ मिलती हैं। समस्त गुजरात में इनकी अन्य और अप्रतिम दश-पन्द्रह प्रतिमाएँ भी नहीं मिल सकतीं। आबू पर विमलवसही की देहरी न० १८ में उनकी अभिनव प्रतिमा स्थापित है। वैसे ही शत्रुञ्जय पर भी हाथी पोल के निकट श्रेयांसनाथ जिनालय है जो सं०

१६७५ में निर्मित हुआ था। उसमें विराजित प्रतिमा भी उतनी ही प्राचीन होना निर्विवाद है। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद के पास उणाद गाँव में भी इन भगवान का एक मन्दिर होना ज्ञात हुआ है। शंखेश्वर जी की देहरी न० ६ में इन की एक सुन्दर प्रतिमा विराजमान है।

वासुपूज्य

ये बारहवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन महिष, यक्ष कुमार, यक्षिणी चंडा और दिगम्बर मतानुसार गान्धारी है।

इन तीर्थंकर की संख्याबद्ध प्रतिमाएँ गुजरात में संप्राप्त हैं। आबू पर विमलवसही की देहरी न० १३ में, लूणगवसही की प्रथम देहरी में वासुपूज्य स्वामी की प्रतिमाएँ हैं। इसके अतिरिक्त जामनगर में इनके नाम से प्रसिद्ध मन्दिर में, अहमदाबाद रतनपोल के पास पांजरापोल के मन्दिर में, बड़ौदा प्रान्त के शिनोर गाँव में, आतरसुंबा में, हारीज तालुके के बोरतवाड़ा में, शत्रुञ्जय स्थित बाला बसही टोंक में, पाटण—फोफलियावाड़ा में इनके मन्दिर हैं और मूलनायक रूप में दर्शनीय प्रतिमाएँ हैं।

विमलनाथ

ये तेरहवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन वराह, यक्ष षण्मुख, यक्षिणी विदिता और दिगम्बर मतानुसार वैरोट्या है।

विमलनाथ भगवान की कितनी ही प्रतिमाएँ गुजरात में से मिली हैं। आबू पर विमलवसही की देहरी न० ५० में इनकी सुन्दर प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त शत्रुञ्जय पर नमण के टांका के पास के मन्दिर में, अहमदाबाद में महुरतपोल के देरासर में, डीसा के पास मीठी वावड़ी नामक जिनमन्दिर में, शंखेश्वरजी के देहरी न० २३ में और धीणोज के पार्श्व स्थित चवेली गाँव के जिनालय में विमलनाथ भगवान की प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

अनन्तनाथ

ये चौदहवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन श्वेताम्बर मतानुसार बाज और दिगम्बर मतानुसार रीछ है। यक्ष पाताल, यक्षिणी अंकुशा व दिगम्बर मतानुसार अनंतमती है।

अनंतनाथ भगवान की संख्याबद्ध प्रतिमाएँ गुजरात में प्राप्त हैं। आबू पर विमलवसही की देहरी न० ३६ में, लूणगवसही की देहरी न० ४ में अनंतनाथ की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित हैं। इनके अतिरिक्त शत्रुञ्जय पर बाघणपोल के पास, काठियावाड़ के वंथली गाँव में, भरोंच में श्रीमाली पोल में, शंखेश्वर के देहरी न० १० में, विसनगर के काजीवाड़ा नामक मुहल्ले में और सांतलपुर

तालुका के सांतलपुर गाँव में अनंतनाथ भगवान के मन्दिर हैं, जहाँ उनकी रम्य प्रतिमाएँ विराजित है। अन्य भी कितनी प्रतिमाएँ मिलती हैं।

धर्मनाथ

ये पन्द्रहवें तीर्थंकर है। इनका लांछन वज्रदण्ड, यक्ष किन्नर, यक्षिणी कन्दर्पा एवं दिगम्बर मतानुसार मानसी है।

गुजरात में धर्मनाथ भगवान की प्रतिमाएँ कितने ही मंदिरों में प्रतिष्ठित देखी गई हैं। आबू पर विमलवसही में सबसे प्रथम देहरी में उनकी सुन्दर प्रतिमा का दर्शन होता है। शत्रुञ्जय पर हुंबड़ के देहरे के पास, मोतीशा की टूंक में, अहमदाबाद टंकशाल में, हठी सिंह की वाड़ी में, देवमाता के पाड़े में, गुशा पारेख की पोल में, भरोंच के पास कावी में, शंखेश्वरजी की देहरी न० ४६ में और सिद्धपुर तालुका के मछावा गाँव में धर्मनाथ भगवान के मंदिर हैं। जिनमें उनकी प्रतिमाएँ प्रतिष्ठापित हैं।

शान्तिनाथ

जैन पुराणों के कथनानुसार अन्य सभी तीर्थंकरों में शान्तिनाथजी का कुछ महत्वपूर्ण स्थान है। वे सोलहवें तीर्थंकर हैं। उनका लांछन हरिण, यक्ष गरुड़ और यक्षिणी निर्वाणी है। दिगम्बर मत से किंपुरुष और महामानसी है।

गुजरात के अनेक स्थानों में शान्तिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ संख्याबद्ध प्राप्त हैं। शत्रुञ्जय पर वाघण पोल में बाँयें हाथ की ओर जिनालय में शांतिनाथजी की भव्य प्रतिमा विराजमान है। आबू पर विमलवसही की देहरी न० ३ व १२ में, लूणगवसही की देहरी न० १४ में भी उनकी सुन्दर प्रतिमा मिली है। इसके सिवा ईडर में रूठी रानी के महल के पास, जामनगर में देहरासर के चौक में, शंखेश्वरजी की देहरी न० ४० में, अहमदाबाद सांकड़ी सेरी में और गिरनार पर ज्ञानवाव के निकट शान्तिनाथजी के भव्य मन्दिर हैं, जिनमें शान्तिनाथ भगवान की शान्त-ध्यानमग्न अप्रतिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इसके उपरांत शान्तिनाथ भगवान के कितने ही मन्दिर और मूर्त्तियाँ गुजरात में उपलब्ध हैं।

कुन्थुनाथ

ये सत्रहवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन बकरा, यक्ष गंधर्व और यक्षिणी बला, दिगम्बर मत से विजया है।

कुंथुनाथ भगवान की प्रतिमाएँ गुजरात में प्राप्त हैं, किन्तु अन्य तीर्थंकरों की अपेक्षा उनकी संख्या अल्प स्वल्प ही कही जायगी। आबू पर विमलवसही की देहरी न० ५ में उनकी दर्शनीय मूर्त्ति विराजित है। अचलगढ़ में उनका प्राचीन मन्दिर देखते उनकी प्रतिमा भी प्राचीन काल की है। इसके अतिरिक्त

शत्रुञ्जय पर उजम बाई की टोंक में खरतरवसही चौमुख के रास्ते में, तलाजा पर सुमतिनाथ साचादेव के मन्दिर में, अहमदाबाद राजा मेहता की पोल में, लक्ष्मी नारायण की पोल में, शंखेश्वरजी में देहरी न० ३ में एवं बड़ोदा में घडियाली पोल के देहरासर में कुंथुनाथ जिनकी आनंद दायक और मनोहर प्रतिमाएँ स्थापित की हुई हैं। इनके अतिरिक्त कई स्थानों से और भी उनकी प्रतिमाएँ क्वचित् प्राप्य है।

अरनाथ

ये अठारहवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन नंद्यावर्त्त (एक प्रकार का स्वस्तिक), यक्ष यक्षेन्द्र, यक्षिणी धारिणी और दिगम्बर मतानुसार अजिता है।

इन तीर्थंकर की प्रतिमाएँ क्वचित् ही देखने में आती हैं। आबू पर देहरी नं० ३४ में इनकी मूर्त्ति विराजित है। इसके अतिरिक्त बीजापुर के चुनार-पाड़ा के पास, खंभात में जीरावला पाड़ा में, डभोड़ा के पास मोटा ईसनपुर में, शंखेश्वर जी के देहरी न० ४१ में तथा तलोद के पास सांठबा में इन भगवान के मन्दिर हैं, जिनमें अरनाथ जी की दर्शनीय प्रतिमाएँ विराजमान हैं। गुजरात में अरनाथ भगवान की प्रतिमाएँ बहुत ही कम मिलती हैं।

मल्लिनाथ

ये उन्नीसवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन कुंभ, यक्ष कुबेर और यक्षिणी धरणप्रिया, और दिगम्बर मत से अपराजिता है।

मल्लिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ गुजरात में थोड़ी ही मिलती हैं। आबू पर विमलवसही की देहरी न० ४० में उनकी प्रतिमा विराजित हैं। इसके अतिरिक्त प्रभास पाटण में, वारेजड़ के पास धरोड़ा में और खंभात के भोंयरा पाड़ा में उनके मन्दिर हैं जिनमें मल्लिनाथ जी की अनुपम प्रतिमाएँ स्थापित की हुई देखी जाती है। भोयणी तीर्थ तो मल्लिनाथ स्वामी के तीर्थ रूप में सुप्रसिद्ध है।

मुनि सुव्रत

ये बीसवें तीर्थंकर हैं। इनका लांछन कूर्म, यक्ष वरुण, यक्षिणी वरदत्ता और दिगम्बर मतानुसार बहुरूपिणी है।

इनकी प्रतिमाएँ भी मल्लिनाथ व अरनाथ की भाँति गुजरात में बहुत थोड़ी प्राप्त हैं। आबू पर विमलवसही में देहरी न० ६ और ११ में, लूणगवसही की देहरी न० १६ में उनकी पुनीत प्रतिमाएँ स्थापित की हुई हैं। इसके अतिरिक्त सांतलपुर में, जामनगर में और अहमदाबाद-दाल की पोल में इन भगवान के जिनालय हैं जिनमें इन जिनेश्वर भगवान की झांकी मिल सकती है। [क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अनेकान्त ॥ अक्टूबर-दिसम्बर १९८०

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'गोम्मटेश्वर बाहुबली का सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक' (गणेश प्रसाद जैन), 'प्रतिमा की पृष्ठभूमि' (लक्ष्मीचन्द 'सरोज'), 'श्रवण बेलगोल के शिलालेख' (सतीश कुमार जैन), 'उत्तर भारत में गोम्मटेश्वर बाहुबली' (डा० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी), 'भगवान बाहुबली के शल्य नहीं था' (आर्यिका ज्ञानमती), 'जैन काशी : मूडबिद्री' (गोकुल प्रसाद जैन), 'बाहुबली की प्रतिमा गोम्मटेश्वर क्यों कही जाती है ?' (डा० प्रेमचन्द जैन), 'बाहुबली और दक्षिण की जैन परम्परा' (टी० एन० रामचन्द्रन), 'बाहुबली मूर्त्तियों की परम्परा' (लक्ष्मीचन्द जैन), 'इन्द्रगिरि के गोम्मटेश्वर' (राजकृष्ण जैन), 'जैन परम्परा में सन्त और उनकी साधना पद्धति' (डा० देवेन्द्र कुमार शास्त्री), 'षट्द्रव्य में कालद्रव्य' (मुनि विजयमुनि शास्त्री), 'विष्णु सहस्रनाम और जिनसहस्रनाम' (लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'), 'तीर्थंकर महावीर की निर्वाण भूमि पावा' (गणेश प्रसाद जैन), 'नागछत्र परम्परा और पार्श्वनाथ' (डा० भगवतीलाल पुरोहित), 'अनागत चौबीसी : दो दुर्लभ कलाकृतियाँ' (कुन्दनलाल जैन), 'कुन्द-कुन्द की कृतियों का संरचनात्मक अध्ययन' (डा० बी० भट्ट), 'बाहुबली चरित्र विकास एवं तद्विषयक वाङ्मय' (डा० राजाराम जैन), 'महाकवि पुष्पदन्त का बाहुबली आख्यान' (डा० देवेन्द्र कुमार जैन), 'गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी और उनसे सम्बन्धित साहित्य' (वेदप्रकाश गर्ग), 'गोम्मट मूर्ति की कुण्डली' (ज्योतिषाचार्य गोविन्द पेइ), 'अन्तिम श्रुतकेवली महान् प्रभावक आचार्य भद्रबाहु' (सतीश कुमार जैन), 'हिन्दी कवि उदयशंकर भट्ट की काव्य सृष्टि में बाहुबली' (राजमल जैन), 'श्री पुण्य कुशल गणि और उनका भरत बाहुबली-महाकाव्यम्' (डा० हरीन्द्रभूषण जैन)।

कथालोक ॥ फरवरी १९८१

इस अंक में है 'शौर्य और साधना के शाश्वत प्रतीक गोम्मटेश्वर' (डा० नेमीचन्द जैन)।

तीर्थंकर || जनवरी १९८१
णमोकार मन्त्र विशेषांक-२

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है व्याख्यान : णमोकारः माहात्म्य, प्रभाव और विधि, णमोकार और बीजाक्षर, णमोकार और व्यक्ति शुद्धि, णमोकार और रंग विज्ञान, णमोकार और शरीर विज्ञान, णमोकार मन्त्र और चत्तारिमंगलं, बहुआयामी मंत्र, अनुभव अपने-अपने (११६ व्यक्तियों के अनुभव) और उस पर आधारित सर्वेक्षण—निष्कर्ष, हिन्दी कन्नड़ यात्री शब्द-कोश।

तीर्थंकर || फरवरी १९८१
गोम्मटेश्वर अंक

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'कर्नाटक के कला किरीट गोम्मटेश्वर बाहुबली' (डा० नेमीचन्द जैन), 'जब गोम्मटेश्वर ने डग भरा' (वीरेन्द्र कुमार जैन), 'श्रवण बेलगोल के प्राचीन सन्दर्भ' (डा० भागचन्द्र भास्कर), 'बाहुबली' (जैनेन्द्र कुमार), 'भगवान बाहुबली' (देवेन्द्र कुमार शास्त्री), 'अरिष्टनेमि की वापसी' (डा० प्रेम सुमन जैन), 'गोम्मट : शब्द कथा' (डा० ए० एन० उपाध्ये), 'गोम्मटेस थुदि के हिन्दी अनुवाद' (डा० नेमीचन्द जैन), 'श्वेताम्बर साहित्य में भरत बाहुबली' (अगरचन्द नाहटा), कन्नड़ हिन्दी यात्री शब्द-कोश।

श्रमण || फरवरी १९८१

'कीर्ति के शत्रु क्रोध और कुशील' (आचार्य आनन्द ऋषि), 'महाकवि पुष्पदन्त और गोम्मटेश्वर बाहुबली' (डा० देवेन्द्र कुमार), 'कल्पना का स्वर्ग या स्वर्ग की कल्पना' (सौभाग्यमल जैन), 'सदाचार का मानदण्ड और जैन धर्म' (डा० सागरमल जैन)।

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि के (१९५६) ८ नं० धारा के अनुसार प्रदत्त विवृति :

प्रकाशन स्थान :	कलकत्ता
प्रकाशन अवधि :	मासिक
मुद्रक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
प्रकाशक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सम्पादक का नाम :	गणेश ललवानी (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
स्वत्वाधिकारी का नाम :	जैन भवन
ठिकाना :	पी० २५ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७

मैं, गणेश ललवानी, घोषणा करता हूँ कि, उपरोक्त विवरण मेरे ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है ।

गणेश ललवानी

१५-३-८१ प्रकाशक का हस्ताक्षर

Vol. IV No. 11 : Titthayara : March 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001